१२ कर्मवाद के आधारभूत सिद्धान्त

□ डॉ. शिव मुनि

ज्ञान एक महान् निधि है। वह है भी हमारे भीतर ही। आश्चर्य तो इस बात का है कि जो हमारे भीतर है उसका हमें पता तो है किन्तु अनुभव नहीं है। इसके बीच में कोई रुकावट अवश्य है। जैन दर्शन में उसी रुकावट को, आवरणों को कर्म कहा है।

कर्म एक निर्जीव तत्त्व है। आवरण जितने भी होते हैं सभी निर्जीव होते हैं। इन आवरणों को दूर करने के लिए अनेक सन्तों, ऋषियों, महर्षियों ने प्रयत्न किए हैं। कुछ उन प्रयत्नों में सफल भी हुए हैं और कुछ सफलता की ओर अभी तक आगे बढ़ते चले आ रहे हैं। सभी का एक ही लक्ष्य है येन-केन-प्रकारेण। इन आवरणों से छुटकारा हो जाए। बन्धन से छुटकारा सब चाहते हैं किन्तु अपनी इस वास्तविक चाह के अनुरूप जब तक साधना नहीं होती छुटकारा सम्भव नहीं हो सकता। कर्मों से छुटकारा पाने के लिए यह आवश्यक है कि सबसे पहले अपने ज्ञान को सही रूप में जागृत किया जाए। जब तक ज्ञान का जागरण नहीं होगा, कौन छूटेगा, किससे छूटेगा, यह सब प्रश्न उलझे ही रह जाएँगे। इसीलिए भगवान् महावीर ने **"पढमं नाणं"** का सूत्र दिया है। प्रथम ज्ञान। कर्म क्या है, यह समझ लेना बहुत जरूरी है। इसी समझ को भगवान् महावीर ज्ञान कहते हैं। जिनमें यह समझ नहीं है, वे अपनी ही नासमझी के कारण अज्ञानी कहे जाते हैं। जिसका ज्ञान आवृत्त है, ढका हुआ है, वह अज्ञानी है। आवरण के परमाणु जब तक आत्मा से सम्बद्ध रहते हैं, तब तक वह परवश रहती है। हमारे चारों ओर जो परमाणु का जाल है, वही कर्म जाल है। इस जाल से वही निकल सकता है जो इसके मूल कारण को जानता है। आवरण के कारण को समझ लेना कर्मों से मुक्ति होने का प्रथम सूत्र है।

कर्म परमाणुओं की भी अपनी एक शक्ति होती है। जैसे-जैसे कर्म हम करते हैं, वे परमाणु कर्म क्रिया के आरम्भ से ही अपने स्वभाव के अनुसार चलने लगते हैं। अपने स्वभाव के अनुसार कार्य ही कर्म का फल है। कुछ लोग कर्म फल के विषय में ईश्वर का नाम लेते हैं। पर यह सिद्धान्त सही प्रतीत नहीं होता। जब भगवान् इनसे रहित है, फिर वह किसी के कर्म फल के झमेले में क्यों पड़ेगा? गीता में इस विषय पर बड़ा ही सुन्दर विवेचन मिलता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

न कतृत्वं न कर्माणि, लोकस्य सृजति प्रभु ।
न कर्म फल संयोगं, स्वभावास्तु प्रवर्तते ।।

हे अर्जुन ! न मैं कर्म करता हूं, न ही संसार को बनाता हूँ । जीवों को उनके कर्म का फल भी नहीं देता हूँ । इस संसार में जो भी कुछ हो रहा है, वह स्वभाव से ही हो रहा है । इससे स्पष्ट है कि न तो भगवान् संसार का निर्माण करते हैं और न ही कर्मों का फल ही देते हैं। कर्म एक प्रकार की शक्ति है । आत्मा भी अपने प्रकार की एक शक्ति है । कर्म आत्मा करता है । जो कर्म उसने किए हैं । वे अपने-अपने स्वभावानुसार उसे फल देते हैं । यहां किसी भी न्यायाधीश की आवश्यकता नहीं । हमारे आत्मप्रदेशों में मिथ्यात्व, अविरति प्रमाद, कषाय और योग इन पांच निमित्तों से हलचल होती है । जिस क्षेत्र में आत्म-प्रदेश हैं, उसी क्षेत्र में कर्म योग्य पुद्गल जीव के साथ बंध जाते । हैं कर्म का यह मेल दूध और पानी जैसा होता है। 'कर्म ग्रंथ' में कर्म का लक्षण बताते हुए कहा गया है —**कीरइ जोएण हे उहि, जोग तो भण्णए कम्म'** अर्थात् कषाय आदि कारणों से जीव के द्वारा जो किया जाता है, वह कर्म होता है । कर्म दो प्रकार के होते हैं । एक भाव कर्म और दूसरा द्रव्य कर्म । आत्मा में राग, द्वेष आदि जो विभाव हैं, वे भाव कर्म हैं । कर्म वर्गणा के पुद्गलों का सूक्ष्म विकार द्रव्य कर्म कहलाता है । भाव कर्म का कर्त्ता उपादान रूप से जीव है और द्रव्य कर्म से जीव निमित्त कारण होता है । निमित्त रूप से द्रव्य कर्म का कर्त्ता भी जीव ही है । भाव कर्म में द्रव्य कर्म निमित्त होता है और द्रव्य कर्म में भाव कर्म निमित्त होता है । इस प्रकार द्रव्य कर्म और भाव कर्म दोनों का परस्पर बीज और अंकुर की भांति कार्य-कारण भाव सम्बन्ध है ।

संसार में जितने भी जीव हैं, आत्मस्वरूप की दृष्टि से सब एक समान हैं फिर भी वे भिन्न-भिन्न अनेक योनियों में, अनेक स्थितियों में शरीर धारण किए हुए हैं । एक अमीर है, दूसरा गरीब है । एक पंडित है, दूसरा अनपढ़ है । एक सबल है दूसरा निर्बल है । एक मां के उदर से जन्म लेने वाले दो बालकों में भी अन्तर देखा जाता है । अन्तर की इस विचित्रता में कोई न कोई कारण तो अवश्य ही है । वह कारण है कर्म । हमें सुख-दुःख का अनुभव होता है, वह तो प्रत्यक्ष दिखता है, किन्तु कर्म नहीं दिखते । जैन दर्शन में कर्म को पुद्गल रूप माना है । इसलिए वह साकार है, मूर्त्त है । कर्म के जो कार्य हैं वे भी मूर्त्त हैं । जहां कारण मूर्त्त होता है, वहां उसका कार्य भी मूर्त्त ही होगा । जैसे घड़ा है, वह मिट्टी से बनता है । इससे मिट्टी कारण है और घड़ा कार्य है । दोनों मूर्त्त हैं । जिस प्रकार मूर्त्त कारण की बात कही गई है, अमूर्त्त कार्य-कारण के लिए भी यही नियम है । जहां कारण अमूर्त्त होगा, वहां उसका कार्य भी अमूर्त्त होगा । ज्ञान का कारण आत्मा है, यहां ज्ञान और आत्मा दोनों अमूर्त्त हैं । आप पूछ सकते हैं कि जब अमूर्त्त से अमूर्त्त की ही उत्पत्ति होती है तो फिर मूर्त्त कर्मों से सुख-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

दुःख आदि अमूर्त्त तत्त्वों की उत्पत्ति कैसे होती है ? सुख आदि हमारी आत्मा के धर्म हैं और आत्मा ही उनका उत्पादन कारण है। कर्म तो केवल सुख-दुःख में निमित्त कारण रूप हैं। अतः जो कुछ ऊपर कर्म के विषय में कहा गया है वह इन पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है।

यहां यह प्रश्न अवश्य विचारणीय है कि जब कर्म तो मूर्त्त हैं और आत्मा अमूर्त्त हैं फिर दोनों का मेल कैसे खायेगा ? अमूर्त्त आत्मा पर कर्म कैसे प्रभावी हो सकते हैं ? आपने कभी मदिरा तो देखी होगी। मदिरा मूर्त्त होती है। जब मनुष्य मदिरा को पी लेता है तो जिस प्रकार आत्मा के अमूर्त्त ज्ञान आदि गुणों पर उसका प्रभाव होता है, ठीक उसी प्रकार मूर्त्त कर्मों का अमूर्त्त आत्मा पर प्रभाव होता है।

भारतीय दर्शन में यह कर्मवाद सिद्धान्त अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। चार्वाकों को छोड़कर समस्त दार्शनिक किसी न किसी रूप में कर्मवाद को अवश्य स्वीकार करते हैं। भारतीय दर्शन, धर्म, साहित्य, कला और विज्ञान आदि सब पर कर्मवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से दीख पड़ता है। जीव अनादि काल से कर्मों के वशीभूत होकर अनेक भवों में भ्रमण करता चला आ रहा है। जीवन और मरण दोनों की जड़ कर्म है। इस संसार में जन्म और मरण ही सबसे बड़ा दुःख है। जो जैसा करता है, वैसा ही फल भोगना पड़ता है। एक प्राणी पर दूसरे प्राणी के कर्मफल का प्रभाव नहीं होता। कर्म स्व सम्बद्ध होता है, पर सम्बद्ध नहीं। यद्यपि सभी विचारकों ने कर्मवाद को माना है फिर भी जैन शास्त्रों में इसका जितना विशद विवेचन मिलता है, उसकी तुलना अन्यत्र दुर्लभ ही हैं। यही कारण है कि कर्मवाद जैन दर्शन का एक आत्मीय अंग बन गया है। कर्मवाद के कुछ आधारभूत सिद्धान्त होते हैं जिन्हें हम इस प्रकार समझ सकते हैं :—

१. प्रत्येक क्रिया फलवती होती है। कोई भी क्रिया निष्फल नहीं होती।
२. यदि किसी क्रिया का फल इस जन्म में नहीं प्राप्त होता तो उसके लिए भविष्यकालीन जीवन अनिवार्य है।
३. कर्मों का कर्त्ता और उनके फलों का भोक्ता यह जीव, कर्मों के प्रभाव से एक भव से दूसरे भव में गमन करता रहता है। अपने किसी न किसी भव के माध्यम से ही वह एक निश्चित काल-मर्यादा में रहता हुआ अपने पूर्व कृत कर्मों का फलभोग तथा नए कर्मों का बन्धन करता है। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि कर्म बन्धन की इस परम्परा को तोड़ना भी उसकी शक्ति के अन्तर्गत ही है।
४. जन्मजात व्यक्ति-भेद और असमानता कर्मों के कारण ही होती है।

आत्मा की अनन्त शक्ति पर कर्मों का आवरण आया हुआ है जिसके कारण हम अपने आपसे परिचित नहीं हो पा रहे हैं। इन कर्मों से हम तभी मुक्त हो पाएँगे, जब हमें अपनी शक्ति का पूरा परिचय और भरोसा होगा। •

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org